International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 986-988

लोकजीवन में सोलह या चौसठ कलाओं की उपयोगिता

पूनम शर्मा
पी०एच०डी०, शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वद्यिालय, जम्मू, जम्मू और कश्मीर, भारत।

प्रस्तावना

कलाएँ तो अनन्त एवं असीमित होती हैं परन्तु अध्ययन की उपयोगिता की दृष्टि से उन्हें सोलह या चौसठ कलाओं के अन्तर्गत समाहित किया जाता है। कलाओं का विवेचन पुराणों रामायण[1] महाभारत[2], मनुस्मृति[3], पंचदषी[4], सुश्रुत संहिता तथा शैवतन्त्र आदि अनेक ग्रन्थों में विशेष रुप से देखने को मिलता है। ऋगवेद में जहॉ कला शब्द का प्रयोग मिलने से कलाओं के प्राचीन होने के प्रमाणों की पुष्टि हो जाती है वही उपनिषदों में तो ऋषि कला शब्द का वर्णन करते हुए कलाओं के असीमित होने का मन्तव्य भी रखते हैं यथा–

"प्राचादिक् कला। दक्षिणादिक् कला। उदीचीदिक् कला।
एष सौम्य। चतुष्कलः पदो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम
सयएतमेव विद्वांश्चतुष्कलं पाद्र ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते
प्रकाशवानिस्मन् लोकं भवति। प्रकाशवतो ह लोकास्जयति।
य एवमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते।"

विविध महाकवियों ने भी अपनी रचनाओं में कलाओं को स्थान देकर कलाओं के महात्मय का निरुपण किया है जिनमें महाकवि कालिदास[5] एवं महाकिव माघ[6] प्रमुख हैं सोलह कलाओं की उपयोगिता एवं आवश्यकता मानव शरीर की सफल दैनन्दिनी में देखी जा सकती है क्योंकि इन कलाओं पर मनुष्य का अधिकार नहीं होता तथापि ये मानव शरीर के लिए अनिवार्य एवं अपरिहार्य हैं जिन्हें हम पंचमहाभु, (पृथ्वी, जल, तेज, वायु अथवा आकाश), पस्चज्ञानेन्द्रिय (ऑख, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा), पंचकर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ) एवं मन के रुप में जानते हैं तो उनकी उपयोगिता तो स्वतः सिद्व है क्योंकि बिना इन कलाओं के मानव शरीर का निर्माण तो हो ही नहीं सकता एवं जिन चौसठ कलाओं का विवरण महर्षि वातस्यायन ने अपने कामसूत्र के तृतीय अध्याय[7] में विशिष्ट रुप से दिया है। वास्तव में यह उपार्जित कलाएँ हैं जिन्हें अभ्यास के द्वारा सीखा जा सकता है। इन चौबीस कलाओं में गायन, नृत्य, वाद्य–संगीत[8], लिपिज्ञान, उदार–सम्भाषण, चित्रकला[9], आलंकारिक लेख, फूलों के गजरे बनाना, पुष्पस्तबक बनाना, स्वादिष्ट व्यंजन बनाना, रत्नपरीक्षण[10], परिधान निर्माण, रङ्गों का परिज्ञान–रंङ्ग बनाना और वस्त्रादि की रंगाई, पाककर्म आदि की सामग्री एकत्रित करना, मान करने की रीति, संचय एवं निर्वाह का ज्ञान, पशु–पक्षियों की चिकित्सा, छल–कपट का ज्ञान, क्रीड़ा–कौशल, लोकज्ञान, विचक्षणता–होशियारी, मालिश–पैर आदि दबाने की रीति, शरीरशुद्वि तथा श्रृंगारादि की विशेष कुशलता आदि चौबीस कलाएँ जहॉ कर्माश्रया कलाओं के अन्तर्गत हैं, वहीं पासे खेलने की यथार्थ रीति, पासे डालने, मूठ रखना, गोटी चलाने का मार्ग, बाज़ी के अनुरुप द्रव्य निकालना, अनेक खेलों का ज्ञान, मुट्ठी में पैसे रखकर पूछना और बताना, सामानका लेन–देन करना, शीघ्रता से लेना, जीते हुए का हिसाब लगाना, दॉव आगे चलना, छल से बहलाना, गृहीत को देना, तीतर–मेढ़ा आदि को लड़ने के लिए खड़ा करना", उन्हें लड़ाना, उन्हें बुलाना, उन्हें भगाना–दौड़ाना और उन्हें नचाना आदि बीस कलाएँ द्यूताश्रया कलाओं के अन्तर्गत हैं जिनमें पन्द्रह निर्जीव तथा पॉच सजीव कलाएँ हैं जबकि पुरुष का भावग्रहण, अपना अनुराग प्रकाशित करना, प्रत्यंगदान, नखक्षत एवं दन्तक्षत की विधि, नीवीस्रंसन गुह्यंग का विधि से स्पर्श, रमणार्थ प्रोत्साहन, अल्पक्रोध प्रकाशन, क्रोध का पूर्णतः निवारण, कुपित प्रसादन, सुरत का परित्याग, उन्तिम शयन विधि एवं गुप्त अड़गों का निगूहन[12] आदि सोहल कलाएँ शयनांपचारिका हैं तथा रमण के लिए अश्रुपातपूर्वक शाप देना अर्थात् जाते हुए पति से ऑसुओं की वर्षा कर कहना कि मुझे इस दशा में रमणातुर छोड़कर जाने में तुम्हारा कल्याण नहीं होगा, जाते हुए पति को अपनी शपथ देकर रोकना जाते हुए पति का अनुगमन करना तथा कहना कि मैं तुम्हारी सहधर्मिणी हूँ इसलिए साथ चलूँगी तथा हस्तगत न हाने पर भी बार–बार निरिक्षण करना[13] आदि चार कलाएँ उत्तरकलाओं के अन्तर्गत समाहित हैं। इनके भेदों–उपभेदों को मिलाकर कुल 518 या उनसे अधिक उपकलाएँ हमें देखने को मिलती हैं जिन्हें अपनाकर मनुष्य जहॉ स्वयं में विशेष दक्षता ले आता है वहीं अपने प्रकार की व्यवहार कुशलता अर्जित कर सकता है। कलाओं की संख्या चौसठ मानने के संदर्भ में वात्स्यायन के साथ–साथ शुक्रनीति तथा तन्त्रगन्थों, कल्पसूत्र तथा कालिकापुराण जैसे जैनीयग्रन्थों में समानता देखने को मिलती है जबकि जैनों के सम–वायाड्ग सूत्र तथा अवपातिक सूत्र एवं प्रबन्ध कोश में कलाओं की संख्या बहत्तर स्वीकार की गई है। ललितविस्तर में तो पुरुष कलारुप में 86 कलाएँ तथा चौसठ कामकलाएँ निर्दिष्ट की गई हैं। शुक्राचार्य रचित नीतिसार में प्रथम सात कलाएँ गन्धर्व वेद से, 8–17 तक आयुर्वेद से, 18–22 धनुर्वेद से सम्बन्धित हैं एवं अन्य लोकपयोगी हैं।

अवधेय है कि महर्षि वात्स्यायन ने "अर्थधर्मार्थ कामेभ्योनमः"[14] रुप में कामसूत्र में जो मंगलाचरण किया है उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके द्वारा प्रतिपादित 64 कलाएँ धर्म, अर्थ एवं काम नामक पुरुषार्थ त्रय के अर्जन एवं सम्पादन से ही है जिसमें उनकी यह भी मान्यता है कि धर्म से समन्वित अर्थ एवं धर्मानुसार कामाचरण प्रशस्य है तथा शरीर की स्थिति का हेतु होने से 'काम' आहार के समान है साथ ही धर्म तथा अर्थ कॉफलीभूत भी यही है जैसा कि कहा गया है–

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः।
फलभूताश्च धमार्थयोः।।15

इन चौसठ कलाओं में निपुण जहॉ कोई स्त्री, पति के विदेश गमन

पर, किसी प्रकार के संकट (वैधव्य) आदि आने पर या किसी दूर देश में जाने पर इन कलाओं का भली–भॉति उपयोग करके अपनी आजीविका चलाकर जिस प्रकार सुखपूर्वक जीवनयापन कर सकती है वहीं कोई पुरुष प्रशंसनीय अथवा असाधारण न होते हुए भी स्त्रियों के चित्त को शीघ्र ही आकर्षित का लेता है।[16] कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने से जहॉ किसी पुरुष का सौभाग्य जाग उठता है, अनर्थ नष्ट हो जाता है वहीं उसे अर्थ अथवा धन, यश तथा काम की भी प्राप्ति होती है।[17] नैषधीयचरितम् के नायक 'नल' भी चौसठ कलाओं में निपुण अथवा ज्ञाता थे। इनके इन गुणों को निषधदेश से आए बन्दियों तथा चारणों आदि से सुनकर ही दमयन्ती ने देवताओं, अनेक राजाओं आदि को छोड़कर नल का वरण किया था। महर्षि वात्स्यायन का कथन है कि जो राजपुत्री, मन्त्रीपुत्र, सामन्त सरदार या किसी वैभवसम्पन्न व्यक्ति की पुत्री इन गीतादि चौसठ कलाओं की ज्ञाता होती है वह कन्या अनेक पत्नियों के होने पर भी अपने पति का हृदय जीतकर उसे अपने अधीन कर लेती है। यथा–

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्रसुता तथा।
सहस्रान्तः पुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम्।।[18]

नैषधीयचरितम् की नायिका दमयन्ती भी चौंसठ कलाओं में दक्ष थीं तभी तो अपनी कलाओं–अनेकविध श्रृंगार, भाषा गायन, चित्रकला आदि से दिव्याङ्गनाओं के समान सन्तुष्ट किया[19] तथा अपने अनुराग, अनुकूल वचनों प्रियभाषणों आदि कलाओं के ज्ञान का यथोचित प्रयोग करके अपनी चतुराई से नल को सर्वदा अपने वश में कर लिया।[20]

यदि कलाओं की उपयोगिता की बात की जाए तो सिन्धु सभ्यता के समय से ही विविध प्रकार के शिल्पों के उच्च कोटि के आचार्य भारत में होते आये हैं। शिल्पों के क्षेत्र में यह प्रगति शिष्य परम्परा से सम्भव ई थी, पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि छठी शताब्दी ई० पू० से पहले शिल्पों की शिक्षा के लिए विद्यालय थे कि नहीं। निःसन्देह शिल्पाचार्यों की अध्यक्षता में उनके साथ रहकर और काम करते हुए सदा से शिल्प सीखने की रीति भारत में प्रचलित रही है और वह सिन्धु सभ्यता के युग में छठी शताब्दी में तक्षशिलाा के विश्वविद्यालय में अठारह शिल्पों की शिक्षा देने के अनेकशः उल्लेख कमलते हैं।[21] अठारह शिल्पों में गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र आदि कलाओं के अतिरिक्त व्यावसायिक विद्यायें भी सम्मिलित थीं।[22] जातकाल के राजकुमार संगीत, वीणा–वादन, मूर्ति–रचना, पंख बनाना, माला गूंथना, भोजन पकाना आदि कामों में निपुण होते थे।[23]

महाभारत समय में गान्धर्व विद्या के उच्चकाटि के विद्यालय थे। अर्जुन ने इन्हीं गान्धर्व विद्यालयों द्वारा नृत्य, गीत तथा वाद्य की शिक्षा ग्रहण की थी। अर्थशास्त्र में कुमारियों तथा राजघराने में काम करने वाली कन्याओं के गीत, वाद्य, पाठ्य, नृत्य, नाट्य, अक्षर चित्र, वीणा–वेणु–मृदंग आदि बजाना, गन्ध माला आदि बनाना संवाहन, वेष–भूषा पहनना आदि सिखाने वाली संस्थाओं के तीसरी शताब्दी ई० पू० से पहले ही राजाओं द्वारा संचालित होने का उल्लेख मिलता है।[24] भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाट्य सम्बन्धी सभी कलाओं की शिक्षा नाट्याचार्यों के द्वारा देने की योजनाऍ मिलती हैं।

गीत, नृत्य वाद्य आलेख्य तथा चित्रकला के द्वारा अर्थाजन की क्रियाऍ जहॉ प्राचीनकला में की जाती थी वहीं आज 21वीं शताब्दी में इन कलाओं की उपयोगिता भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में देखी जा सकती है। आज इन चतुर्विध कलाओं को सिखाने के लिए विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय में विविध प्रकार के विभाग स्थापित हैं वहीं इन्हीं कलाओं के आधार पर सम्भव हो पाया है। इन कलाओं में कौशल प्राप्त करके जहॉ जीवन में सफलता अर्जित की जा सकती है वहीं विपत्ति ग्रस्त होने पर भी इन कलाओं के द्वारा सुखपूर्वक जीवन–यापन किया जा सकता है जैसा कि वात्स्यायन लिखतें भी हैं–

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्यसुता तथा।[25]
सहस्रान्तः पुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम्।।
तथा पतिवियोगेडपि व्यसनं दारुणं गता।
देशान्तरेडपि विद्याभिः सा सुखनैव जीवति।।

प्राचीन समय से ही गायन के क्षेत्र में अनेक गायकों ने अपना स्थान बनाया है जिनमें तानसेन को मुगल सम्राट अकबर के नवरत्नों में गिना जाता था। उनके संङ्गीत में ऐसा जादू था कि उनके द्वारा 'मेघ मलहार' नामक राग गाने पर अपने आप ही मेघों से वर्षा होने लगती थी तथा राग 'भैरवी' गाने पर दीये अपने आप जल उठते थे। आधुनिक काल में भी अनेक गायकों ने गाकर विविध के सम्मान प्राप्त किये हैं जिसमें एम० एस० सुब्बलक्ष्मी (कर्नाटक संङ्गीत) को भारत रत्न, पं० भीमसेन जोशी को पदम् श्री तथा पद्मभूषण डॉ० बालामुरलीकृष्ण (कर्नाटक संङ्गीत) को पदम्भूषण तथा गीतकार गुलज़ार को दादा साहब फालके पुरस्कार प्राप्त हुआ। भारतीय फिल्मी संगीत में 'स्वरों की कोकिला' 'लता मंगेशकर' का नाम तो भुलाया नहीं जा सकता जिन्हें कई पुरस्कार के राष्ट्रीय, अंतराष्ट्रीय, भारत रत्न तथा आठ फिल्म फेयर पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। इसके साथ ही इनका नाम 'गिनीज़ बुक आफ वर्ल्ड रेकार्डस' में भी अंकित है। इसके अतिरिक्त मोहम्मद रफी, कुमार सानू, जगजीत सिंह, के० एल० सहगल तथा आशा भैंसले का नाम भी अत्यन्त प्रसिद्व है।

विविध प्रकार के गीत अकादमी भारतवर्ष में जहॉ रोज़गार के नए–नए अवसर उपलब्ध कराकर जहॉ अर्थ उपार्जन कराते हैं वहीं भारत में प्रचलित विविध प्रकार के नृत्यों यथा–भरतनाट्यम्, कथकली, कत्थक, मणिपुरी, कुच्चीपुड़ी, उड़ीसी तथा मोहिनीअट्टम, लोक नृत्य आदि को अपनाकर भी अर्थेपार्जन करने की विद्याऍ समाज में देखी जा सकती हैं। भारतीय नृत्य कला के क्षेत्र में पं० बिरजू महाराज, सितारा देवी तथा शोभना नारायण आदि का नाम कथक नृत्यकारों के रुप में प्रसिद्व है। इन नृत्यकारों में सितारा देवी एवं शोभना नारायण को पद्म श्री तथा संङ्गीत नाटक अकादमी पुरस्कार तथा पं० बिरजू महाराज को पद्मभूषण, संङ्गीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं कालिदास पुरस्कार की प्राप्ति हुई है। 'कथकलि' नृत्य में 'मालविका मित्रा' का नाम प्रसिद्व नृत्याङ्गना के रुप में प्रसिद्व है। कुच्चीपुड़ी नृत्य के प्रसिद्व नर्तकम राजा एवं राधा का नाम सर्वोपरि है जिनको पद्मश्री, पद्मभूषण पुरस्कार, साहित्यकला परिषद पुरस्कार तथा संगीत नाटक पुरस्कार आदि मिले हैं। मणिपुरी नृत्य में गुरु बिपिन सिंह का नाम प्रसिद्व है। वाद्य के क्षेत्र में भी भारतवर्ष में विविध प्रकार के पुरस्कार एवं अर्थोपार्जन की क्रियाऍ देखी जाती हैं।

भारतीय वाद्यों में ढोलक, सितार, बॉसुरी, तबला, वीणा, मृदंङ्ग, संतूर तथा शहनाई प्रमुख हैं। शहनाई वादन के क्षेत्र में बिसमिल्ला खान, तबला वादन के क्षेत्र में उस्ताद ज़ाकिर हुसैन, वीणा वादक के क्षेत्र में ठाकुर चक्रपाणि सिंह, सरोदवादन के क्षेत्र में उस्ताद अमजद अली खान, बॉसुरी बादन के क्षेत्र में बॉसुरी सम्राट हरिप्रसाद चौरसिया, संतूरवादन के क्षेत्र में पं० शिवकुमार शर्मा को भुलाया नहीं जा सकता इन्होंने भारतीय संगीत को जहॉ अपना योगदान दिया वहीं अर्थोपार्जन भी किया एवं यश अर्जित किया।

प्राचीन समय से ही भारत में स्त्रियॉ किसी पर्व या उत्सव विशेष पर घर की भित्तियॉ अथवा फर्श पर सुन्दर चित्र था आकृति बनाकर उसमें भिन्न–भिन्न प्रकार के रंग भर कर अपने घरों को सजाती थीं।

संस्कृत साहित्य में भी अनेक स्थानों पर रंगोली का उल्लेख मिलता है। श्री हर्ष नैषधीयचरितम् में रंगोली को चौक पूरना[26] आदि नाम से भी व्यवहत किया है। प्राचीन काल में रंगोली के बनाने के लिए हल्दी, चावल का आटा,[27] गेहूँ का आटा आदि का प्रयोग किया जाता था जिसमें प्राकृतिक रंग मिलाकर विभिन्न रंग तैयार किए जाते थे किन्तु आजकल रेत, मार्बल के चूरे आदि रंग मिलाकर स्वास्तिक, कमल, मछली, वृक्ष, पद्मु आदि की आकृति बनाकर रंगोली बनाई जाती है। दीपावली जैसे पर्व पर रंगोली विशेष रुप से बनाई जाती है। रंगोली जिसे चित्रकला का ही एक रुप माना जाता है विभिन्न प्रकार के आयोजनों, प्रतियोगिताओं में बनाकर अनेक पुरस्कारों की प्राप्ति होती है तथा अर्थाजन के अवसर भी प्राप्त होतें हैं।

चित्रकला के क्षेत्र में रविन्द्रनाथ टैगोर, अमृता शेरगिल, एफ० एच० रज़ा का नाम प्रसिद्व है जिन्होंने चित्रकला को अपनाकर न केवल धनार्जन किया अपितु विविध प्रकार के पुरस्कारों की प्राप्ति करके सम्मान भी प्राप्त किए। जिनमें जैमिनी रॉय को पद्म भूषण, एम० एफ० हुसैन को पद्म श्री तथा पद्म भूषण, एस० एच० रज़ा को पद्म श्री तथा कालिदास सम्मान की प्रप्ति हुई है जहॉ तक परिधान निर्माण की कला की बात है तो इस कला को सीखकर कोई भी स्त्री या पुरुष व्यवसाय खोलकर धनार्जन करके सुखपूर्वक जीवनयापन कर सकता है स्वादिष्ट व्यंजन बनाने की कला से सम्बन्धित भी अनेक प्रकार के कोर्स यथा Hotel Management आदि कई स्थानों पर कराए जाते हैं जिनमें शिक्षा प्राप्त करके बड़े–बड़े होटलों में रोज़गार प्राप्त होता है।

इस प्रकार संक्षेप में हम यह कह सकतें हैं कि सोलह कलाएँ जो मनुष्य के भीतर विद्यमान तों हैं किन्तु इन पर बस न होने के कारण मनुष्य कला सम्पन्न नहीं कहलाता। वास्तव में तो इन कलाओं पर सम्पूर्ण अधिकार सम्पूर्ण रुप से भगवान विष्णु, कृष्ण तथा राम का था इसीलिए वे सोलह कला सम्पन्न कहलाए। इसके विपरीत चौसठ कलाएँ जो कि उपार्जित कलाएँ हैं समाज को जहॉ उत्कर्ष बनाने में अपना भरपूर योगदान देती हैं वहीं लोकजीवन में स्नेहिल को अपनाकर व्यक्ति न केवल अर्थोपार्जन करने में समर्थ होता है अपितु यशप्राप्ति कराने में भी चौंसठ कलाओं के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। व्यक्ति इन कलाओं को अपनाकर विशेष दक्षता प्राप्त कर अपनी दैनन्दिनी में निखार लाने के साथ–साथ अपनी मातृ भूमि, समाज एवं देश सेवा भी उत्कृष्ट रुप से कर सकता है।

सन्दर्भ

1. रामायण 1/9/8
2. महाभारत 13/17/140
3. मनु० 2/86, 8/36
4. पंचदशी 2/59
5. माल–विकाग्निमित्र 1/36; कुमारसम्भव 5/72; मेघदूत उ० में 89 श्लोक
6. शिशुपालवधम् 9/32
7. वात्स्यायन कामसूत्र–तृतीय अध्याय, पृ० 94–100
8. धनं च विततं वाद्यं ततं सुषिरमेव च। कांस्य पुष्कर तन्त्रीभिर्वेणुना च यथाक्रमम्।। का० सू० पृ० 94
9. आलेख्यमिति–रुपभेदाः प्रमाणनि भाव लावण्य योजनम्। सादृश्य वर्णिकाभङ्ग इति चित्र षडङ्गकम्।। का० सू० पृ० 94
10. रुप्यरत्नपरीक्षंति–रुप्यमाहतद्रव्यं दीनारादि, रत्न वज्रमणिमुक्तादि, तेषां गुण दोष मूल्यदिभिः परीक्षा व्यवहाराङ्गम।। का० सू० पृ० 98
11. मेषकुक्कुटलावकयुद्वविधिरिति सजीवधूतविधानमेतम्, तत्रोंपस्थानादिभिश्रच्तुरङ्गगैयुद्वविधानं क्रीड़ार्थ वादार्थं च। का० सू० पृ० 98
12. शयनोंपचारिकाः षोडश। तद्यथा–पुरुषस्य भावग्रहणम्, स्वरागप्रकाशनम्, प्रत्य ङ्गदानम्, नखदन्तयोविचारौ, नीवीस्रंसनम, गुह्यस्य संस्पर्शनानुलोम्यम्, परमार्थ कौशलम, हर्षणम्, समानार्थताकृतार्थता, अनुप्रोत्साहहनम्, मृदुक्रोधप्रवर्तनम्, सम्यक् क्रोधनिवर्तनम्, क्रुध प्रसादनम सुप्तपरित्यागः, चरमस्वापविधिः, गुह्यगूहनमिति। का० सू० – वात्स्यायन–1/3/14
13. चेतस्र उतरकलाः। तद्यथ–साश्रुपातं रमणाय शापनम्, स्वशपथक्रिया, प्रस्थितानुगमनम्, पुनः पुनर्निरीक्षणम च। का० सू० वात्सयायन–1/314
14. कामसूत्र, पृ० 24
15. कामसूत्र, 1/2/37